

प्राक् कथन

षट्खंडागमका चौथा भाग इसी वर्ष जनवरीमें प्रकाशित हुआ था। उसके छह माह पश्चात् ही यह पांचवां भाग प्रकाशित हो रहा है। सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रकाशनके विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया था वह, हर्ष है, अधिकांश जैनपत्र-सम्पादकों, अन्य जैन विद्वानों तथा पूर्व भागकी प्रस्तावनामें प्रकाशित हमारे विवेचनके प्रभावसे बिलकुल ठंडा हो गया और उसकी अब कोई चर्चा नहीं चल रही है।

प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन, प्रकाशन व प्रचारकी चार मंजिलें हैं- (१) मूल पाठका संशोधन (२) मूल पाठका शब्दशः अनुवाद (३) ग्रन्थ के अर्थको सुस्पष्ट करनेवाला सुवितृत व स्वतंत्र अनुवाद (४) ग्रन्थके विषयको लेकर उसपर स्वतंत्र लेख व पुस्तकें आदि रचनायें। प्रस्तुत सम्पादन - प्रकाशनमें हमने इनमेंसे केवल प्रथम दो मंजिलें तय करनेका निश्चय किया है। तदनुसार ही हम यथाशक्ति मूल पाठके निर्णयका पूरा प्रयत्न करते हैं और फिर उसका हिन्दी अनुवाद यथाशक्य मूल पाठके क्रम, शैली व शब्दावलीके अनुसार ही रखते हैं। विषयको मूल पाठसे अधिक स्वतंत्रतापूर्वक खोलनेका हम साहस नहीं करते। जहां इसकी कोई विशेष ही आवश्यकता प्रतीत हुई वहां मूलानुगामी अनुवादमें विस्तार न करके अलग एक छोटा मोटा विशेषार्थ लिख दिया जाता है। किन्तु इस स्वतंत्रता में भी हम उत्तरोत्तर कमी करते जाते हैं, क्योंकि वह यथार्थतः हमारी पूर्वोक्त सीमाओंके बाहरकी बात है। हम अनुवादको मूल पाठके इतने समीप रखनेका प्रयत्न करते हैं कि जिससे वह कुछ अंशमें संस्कृत छायाके अभावकी भी पूर्ति करता जाय, जैसा कि हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं। जिन शब्दोंकी मूलमें अनुवृत्ति चली आती है वे यदि समीपवर्ती होनेसे सुझे हुए तो उन्हें भी बार बार दुहराना हमने ठीक नहीं समझा।

हमारी इस सुस्पष्ट नीति और सीमाको न समझ कर कुछ समालोचक अनुवादमें दोष दिखानेका प्रयत्न करते हैं कि अमुक वाक्य ऐसा नहीं, ऐसा लिखा जाना चाहिये था, या अमुक विषय स्पष्ट नहीं हो पाया, उसे और भी खोलना चाहिये था, इत्यादि। हमें इस बातका हर्ष है कि विद्वान्, पाठकोंकी इन ग्रंथोंमें इतनी तीव्र रुचि प्रकट हो रही है। पर यदि वह रुचि सच्ची स्थायी है तो उसके बलपर उपयुक्त चार मंजिलोंमेंसे शेष दो मंजिलोंकी भी पूर्तिका अलगसे प्रयत्न होना चाहिये। प्रस्तुत प्रकाशनके सीमाके बाहरकी बात लेकर सम्पादनादिमें दोष दिखानेका प्रयत्न करना अनुचित और अन्याय है। जो समालोचनादि प्रकट हुए हैं उनसे हमें अपने कार्यमें आशातीत सफलता मिली हुई प्रतीत होती है, क्योंकि, उनमें मूल पाठके निर्णयकी त्रुटियां तो नहीं के बराबर मिलती हैं, और अनुवादके भी मूलानुगामित्वमें कोई दोष नहीं दिखाये जा सके। हां, जहां शब्दोंकी अनुवृत्ति आदि जोड़ी गई हैं वहां कहीं कुछ प्रमाद हुआ पाया जाता है। पर एक ओर हम जब अपने अल्प ज्ञान, अल्प साधन-सामग्री और अल्प समयका, तथा दूसरी ओर इन महान् ग्रन्थोंके अतिगहन विषयविवेचनका विचार करते हैं तब हमें आश्चर्य इस बातका बिलकुल नहीं होता कि हमसे ऐसी कुछ भूलें हुई हैं, बल्कि, आश्चर्य इस बातका होता है कि, वे भूलें उक्त परिस्थितिमें भी इतनी अल्प हैं। इस प्रकार उक्त छिद्रान्वेषी

समालोचकोंके लेखोंसे हमें अपने कार्यमें अधिक दृढता और विश्वास ही उत्पन्न हुआ है और इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जो अल्प भी त्रुटि या स्खलन जब भी हमारे दृष्टिगोचर होता है, तभी हम आगामी भागके शुद्धिपत्र व शंका-समाधानमें उसका समावेश कर देते हैं। ऐसे स्खलनादिकी सूचना करनेवाले सज्जनोंके हम सदैव आभारी हैं। जो समालोचक अत्यन्त छोटी मोटी त्रुटियोंसे भी बचनेके लिये बड़ी बड़ी योजनायें सुझाते हैं, उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इस प्रकाशनके लिये उपलब्ध फंड बहुत ही परिमित है और इससे भी अधिक कठिनाई जो हम अनुभव करते हैं, वह है समयकी। दिनों दिन काल बड़ा कराल होता जाता है और इस प्रकारके साहित्यके लिये रुचि उत्तरोत्तर हीन होती जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारा तो अब मत यह है कि जितने शीघ्र हो सके इस प्राचीन साहित्यको प्रकाशित कर उसकी प्रतियां सब ओर फैला दी जाय, ताकि उसकी रक्षा तो हो। छोटी मोटी त्रुटियोंके सुधारके लिये यदि इस प्रकाशनको रोका गया तो संभव है उसका फिर उद्धार ही न हो पावे और न जाने कैसा संकट आ उपस्थित हो। योजनाएं सुझाना जितना सरल हैं, स्वार्थत्याग करके आजकल कुछ कर दिखाना उतना सरल नहीं हैं। हमारा समय, शक्ति, ज्ञान और साधन सब परिमित हैं। इस कार्यके लिये इससे अधिक साधन-सम्पन्न यदि कोई संस्था या व्यक्तिविशेष इस कार्य-भारको अधिक योग्यताके साथ सम्हालने को प्रस्तुत हो, तो हम सहर्ष यह कार्य उन्हें सौंप सकते हैं। पर हमारी सीमाओंमें फिलहाल और अधिक विस्तारकी गुंजाइश नहीं है।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमें से अन्तिम तीन प्ररूपणाएं समाविष्ट हैं - अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इनमें क्रमशः ३९७, ९३ व ३८२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग ४८, ६५ तथा ७६ शंका समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करनेके लिये क्रमशः १, २, और ३ विशेषार्थ लिखे गये हैं। तुलनात्मक व पाठभेद संबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः २९९, ९३ और १४४ है। इस प्रकार इस ग्रन्थभागमें लगभग १८९ शंका-समाधान, ६ विशेषार्थ और ५३६ टिप्पण पाये जावेंगे।

सम्पादन-व्यवस्था व पाठ-शोधनके लिये प्रतियोंका उपयोग पूर्ववत् चालू रहा। पं. **हीरालालजी शास्त्री** यह कार्य नियतरूपसे कर रहे हैं। इस भागके मुद्रित फार्म **श्री. पं. देवकीनन्दनजी सिध्दान्तशास्त्री**ने विशेषरूपसे गर्मीके विराम-कालमें अवलोकन कर संशोधन भेजनेकी कृपा की है, जिनका उपयोग शुद्धिपत्रमें किया गया है। कन्नडप्रशस्तिका संशोधन पूर्ववत् डा.ए.एन. उपाध्येजीने करके भेजा है। प्रति मिलानमें **पं. बालचंद्रजी शास्त्री**का सहयोग रहा है। इस प्रकार सब सहयोगियोंका साहाय्य पूर्ववत् उपलब्ध है जिसके लिये मैं उन सबका अनुगृहीत हूँ।

इस भागकी प्रस्तावनामें पूर्वप्रतिज्ञानुसार **डा. अवधेशनारायणजी**के गणितसम्बन्धी लेखका अविकल हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। इसका अनुवाद मेरे पुत्र चिरंजीव **प्रफुल्लकुमार बी.ए.** ने किया था। उसे मैंने अपने सहयोगी प्रोफेसर **काशीदत्तजी पांडे**के साथ मिलाया और फिर **डा. अवधेशनारायणजी**के पास भेजकर संशोधित करा लिया है। इसके लिये इन सज्जनोंका मुझपर आभार है। चौथे भागके गणितपर भी एक लेख **डा. अवधेशनारायणजी** लिख रहे हैं। खेद है कि अनेक

कौटुंबिक विपत्तियों और चिन्ताओंके कारण वे उस लेखको इस भागमें देनेके लिये तैयार नहीं कर पाये। अतः उसके लिये पाठकोंको अगले भागकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।

आजकल कागज, जिल्द आदिका सामान व मुद्रणादि सामग्रीके मिलनेमें असाधारण कठिनाईका अनुभव हो रहा है। कीमतें बेहद बढ़ी हुई हैं। तथापि हमारे निरन्तर सहायक और अद्वितीय साहित्यसेवी **पं. नाथूरामजी प्रेमी**के प्रयत्नसे हमें कोई कठिनाईका अनुभव नहीं हुआ। इस वर्ष उनके ऊपर पुत्रवियोगका जो कठोर वज्रपात हुआ है उससे हम और हमारी संस्थाके समस्त ट्रस्टी व कार्यकर्त्तागण अत्यन्त दुखी हैं। ऐसी अपूर्व कठिनाइयोंके होते हुए भी हम अपनी व्यवस्था और कार्यप्रगति पूर्ववत् रखनेमें सफल हुए हैं, यह हम इस कार्यके पुण्यका फल ही समझते हैं। आगे जब जैसा हो, कहा नहीं जा सकता।

किंग एडवर्ड कॉलेज
अमरावती
२०-७-४२



हीरालाल जैन